सुखदेव सिंह

बनाम

गिधौर के महाराजा बहादुर

2 मई, 1951

[सैय्यद फजल अली, मुखर्जी और

एन.चंद्रशेखर अय्यर न्यायमूर्तिगण]

घाटवाली कार्यकाल-प्रकृति और घटनाएँ-सरकारी घाटवाली और जमींदारी घाटवाली-अंतर-जमींदार का उप-मृदा खनिजों का अधिकार-जिला राजपत्र-साक्ष्य मूल्य।

यद्यपि ऐसे कई उदाहरण हैं जहाँ सरकारी घाटवाली अन्य व्यक्तियों की जमींदारी में सम्मिलित किया गया है, तथापि जहाँ किसी घाटवाली के वास्तविक स्वरूप के संबंध में स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है, वहाँ यह तथ्य कि वह अधिकार किसी जमींदारी के अंतर्गत शामिल है और उस पर निर्धारित जमा में सम्मिलित है, उस पक्ष के पक्ष में निर्णय को झुका देगा जो यह दावा करता है कि वह यह एक ऐसा भू-अधिकार है जो जमींदारी पर निर्भर है।

केवल यह तथ्य कि घाटवाली को समाहर्ता के अधीन बताया गया है, उसकी प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं होता; अर्थात् यदि वह जमींदारी घाटवाली थी, तो मात्र समाहर्ता के अधीन बताए जाने से वह सरकारी घाटवाली नहीं बन सकती।

किसी जमींदार द्वारा स्थापित की गई किरायेदारी में, जब तक इसके विपरीत कोई प्रमाण न हो कि उसने कभी अपने भूमिगत अधिकार त्याग दिए हैं, यह माना जाएगा कि वे अधिकार उसी के पास हैं।

जिला राजपत्र में एक बयान आवश्यक रूप से निर्णायक नहीं है, लेकिन राजपत्र कुछ मूल्य का एक आधिकारिक दस्तावेज है, क्योंकि इसे अनुभवी अधिकारियों द्वारा आधिकारिक रिकॉर्ड से तथ्य प्राप्त करने के बाद बहुत सावधानी के साथ संकलित किया जाता है।

(घाटवाली कार्यकाल के इतिहास और घटनाओं पर चर्चा की गई)।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार 1950 की दीवानी अपील सं. 29।

यह अपील दिनांक 10 अक्टूबर, 1945 के उस निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध है, जो पटना उच्च न्यायालय द्वारा (मनोहर लाल एवं दास, न्यायमूर्तिगण) 1942 की अपील संख्या 64 में पारित की गई थी, जो कि 1941 की दीवानी वाद संख्या 10 में मुंगेर के अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा दिनांक 28 फरवरी, 1942 को पारित डिक्री से उत्पन्न हुई थी।

अमरेंद्र नाथ सिन्हा (*समरेंद्र नाथ मुखर्जी*, उसके साथ) अपीलार्थियों के लिए।

लाल नारायण सिन्हा (*आर. सी. प्रसाद*, उनके साथ) उत्तरदाता के लिए।

1951 2 मई। न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

फजल अली न्यायमूर्ति - यह एक अपील है, जो पटना में उच्च न्यायालय के उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध है, जिसने वादी-उत्तरदाता द्वारा दायर स्वत्व वाद में मुंगेर के अधीनस्थ न्यायाधीश के निर्णय और डिक्री की पुष्टि की थी।

वादी, गिधौर के महाराजा, वादी-प्रतिवादी, जो अधीनस्थ दोनों न्यायालयों में सफल रहा है, मुंगेर ज़िले में स्थित गिद्धौर राज नामक एक अविभाज्य संपत्ति का स्वामी है। प्रतिवादी प्रथम पक्ष के पूर्वज मूल रूप से महाल डुमरी निस्फ कटौना, टी. सं. 325 नामक एक घाटवाली अधिकार में 4 आने का हिस्सा रखते थे, और बाद में निजी बंटवारे द्वारा उन्हें मौजा डुमरी तथा उसके 47 टोले आवंटित हुए, जिनका विवरण वादपत्र की अनुसूची-I में दिया गया है। प्रतिवादी प्रथम पक्ष के पूर्वजों के विरुद्ध चेथरू राय द्वारा प्राप्त बंधक डिक्री के निष्पादन में, उनके उक्त अधिकार को गिद्धौर के महाराजा ने अपने एक कर्मचारी के नाम से खरीद लिया, और उस कर्मचारी ने 19 अप्रैल, 1904 को संपत्ति का कब्जा प्राप्त कर लिया। 13 अगस्त, 1903 को प्रतिवादी प्रथम पक्ष के पूर्वजों ने बिक्री को अपास्त करने के लिए आवेदन दायर किया, जिसे निष्पादन न्यायालय ने खारिज कर दिया और निष्पादन न्यायालय के आदेश के विरुद्ध दायर अपील को उच्च न्यायालय के साथ-साथ प्रिवी काउंसिल द्वारा भी खारिज कर दिया गया। आपराधिक न्यायालयों में कुछ विवादों के बाद, प्रतिवादी द्वितीय पक्ष

ने स्वयं को प्रतिवादी प्रथम पक्ष का पट्टेदार बताते हुए 1937 में जमुई के उप-मंडल पदाधिकारी से खनन अनुज्ञप्ति प्राप्त किया और इसके पश्चात जिला दण्डाधिकारी ने शांति भंग की आशंका के कारण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अंतर्गत कार्यवाही प्रारंभ की, जिसका निर्णय प्रतिवादी प्रथम एवं द्वितीय पक्ष के पक्ष में तथा वादी के विरुद्ध हुआ।

वादी का मामला यह है कि, धारा 144 की कार्यवाही में पारित आदेश से उत्साहित होकर, प्रतिवादियों ने वादपत्र की अनुसूची-II में उल्लिखित टोलों में खनन कार्य प्रारंभ कर दिया और उन्होंने अभ्रक की पर्याप्त मात्रा निकाल ली और फलस्वरूप उसे वर्तमान वाद दायर करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस वाद में, उपर्युक्त उल्लिखित तथ्यों का वर्णन करने के पश्चात, वादी ने समस्त महल डुमरी के संबंध में उप-मृदा अधिकारों की घोषणा की प्रार्थना की तथा वादपत्र की अनुसूची-II में निर्दिष्ट टोलों में स्थित बंधक भूमि के कब्जे की पुनर्प्राप्ति की भी मांग की। उसने साथ ही अंतरिम लाभ तथा एक स्थायी निषेधाज्ञा की भी प्रार्थना की, जिससे प्रतिवादी प्रथम एवं द्वितीय पक्ष को वादपत्र की अनुसूची-II में वर्णित भूमि से अभ्रक या अन्य भूमिगत खनिज निकालने से रोका जा सके। इन राहतों के लिए जिन आधारों पर दावा किया गया, उनका सार वादपत्र के कंडिका 12 में इन शब्दों में प्रस्तुत किया गया है:-

"कि वादी यह निवेदन करता है कि वह डुमरी निस्फ कटौना का 16 आने का स्वामी होने के नाते, उक्त तालुका के अंतर्गत स्थित सभी भूमिगत खनिजों, जिनमें अभ्रक भी शामिल है, पर उसका अटल अधिकार एवं स्वत्व है। वादी आगे यह भी निवेदन करता है कि प्रतिवादी प्रथम पक्ष के पूर्वजों के उक्त 4 आने के मोक़रारी हिस्से में उनके सभी अधिकार एवं हित, 1903 में नीलामी क्रय द्वारा वादी के पूर्वज ने प्राप्त कर लिए थे, प्रतिवादी प्रथम पक्ष का अभ्रक तथा अन्य भूमिगत खनिजों में किसी प्रकार का कोई अधिकार या हित नहीं है, और न ही प्रतिवादी द्वितीय पक्ष को प्रतिवादी प्रथम पक्ष द्वारा कथित रूप से दिए गए पट्टों के आधार पर कोई वैध अधिकार प्राप्त हुआ है, विधि के अनुसार वादी अपने सभी भूमिगत

अधिकारों, जिनमें अभ्रक भी सम्मिलित है, के संबंध में अपने स्वत्व और कब्जे की घोषणा प्राप्त करने का अधिकारी है...........।"

वाद प्रतिवादी संख्या 1 से 11 (प्रतिवादी प्रथम पक्ष) द्वारा किया गया, किन्तु, जैसा कि विचारण न्यायाधीश ने उल्लेख किया है, वास्तविक प्रतिवादी प्रतिवादी संख्या 1 था, जो अपीलकर्ता का पिता है। इस प्रतिवादी का मामला यह था कि गाँव डुमरी में चार आने का हिस्सा एक घाटवाली अधिकार था, जो प्रतिवादी प्रथम पक्ष के पूर्वजों को तालुका के पहाड़ी दर्रों की रक्षा के लिए मुस्लिम शासकों द्वारा प्रदान किया गया था, और जिस अनुदान के अंतर्गत वे उसे धारण करते थे, उसे बाद में ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रतिनिधि कैप्टन ब्राउन द्वारा पुष्टि की गई थी। प्रतिवादी संख्या 1 ने आगे यह तर्क दिया कि खनिज एवं उप-मृदा अधिकार घाटवाली अधिकार के धारक होने के नाते उसी में निहित हैं, और यह कि वादी ने 1903 की अपनी नीलामी-खरीद से कोई अधिकार प्राप्त नहीं किया, क्योंकि वादगत संपत्ति एक सरकारी घाटवाली अधिकार थी, जो अविलेखनीय है, और इसलिए उक्त नीलामी-खरीद अमान्य है। अंत में, यह भी तर्क किया गया कि इस प्रतिवादी तथा उसके पूर्वजों ने वाद दायर होने से पूर्व 12 वर्षों से अधिक समय तक, अपने घाटवाली अधिकार के प्रतिपादन में तथा वादी और उसके पूर्वजों की जानकारी में, खानों और खनिजों पर कब्जे के अधिकार का प्रयोग किया है, और इस प्रकार उन्होंने वादगत खानों एवं खनिजों—विशेषकर वादपत्र की अनुसूची-II में वर्णित भूमि में स्थित खनिजों—पर प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अटल अधिकार प्राप्त कर लिया है।

अधीनस्थ न्यायाधीश ने वाद को डिक्री कर दिया और अन्य बातों के साथ यह माना कि विवादित अधिकार एक जमींदारी घाटवाली अधिकार है, यह अविलेखनीय नहीं है, वादी 1903 में क्रय करने के बाद से लेकर 1938 में जिला दण्डाधिकारी के आदेश तक संपत्ति के कब्जे में रहा, महल का स्वामी होने के नाते वादी खनिज एवं उप-मृदा अधिकारों का अधिकारी है, तथा बंधक बिक्री के अंतर्गत केवल सतही अधिकार ही वादी को प्राप्त हुए थे।

अधीनस्थ न्यायाधीश के निष्कर्षों को अपील में उच्च न्यायालय द्वारा मूलतः बरकरार रखा गया, इस संशोधन के साथ कि, जहाँ एक ओर उसने अधीनस्थ न्यायाधीश से सहमति जताई कि उप-मृदा अधिकार स्वामी के पास ही रहे, वहीं उच्च न्यायालय ने यह भी माना कि यदि यह मान भी लिया जाए कि प्रतिवादी संख्या 1 के पास उप-मृदा अधिकार थे, तो भी वे अधिकार 1903 की बंधक बिक्री में स्थानांतरित हो गए, और इस प्रकार किसी भी स्थिति में वादी ही उप-मृदा का वास्तविक स्वामी है। प्रतिवाद में उठाई गई प्रतिकूल कब्जे की दलील के संबंध में उच्च न्यायालय का निष्कर्ष यह था कि ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि प्रतिवादी संख्या 1 के पट्टेदारों की ओर से कोई खदान संचालित की गई थी, और अधिकतम यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि हाल के वर्षों में, संभवतः 1935 के बाद से, कुछ छिटपुट कब्जे के कार्य हुए थे; अतः यह दलील स्वीकार नहीं की जा सकती।

इस अपील में अपीलकर्ता की ओर से दिए गए दो मुख्य तर्क इस प्रकार हैं:-

(1) कि अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा यह जो निष्कर्ष निकाला गया कि प्रतिवादी प्रथम पक्ष के पास जो घाटवाली अधिकार था वह जमींदारी घाटवाली था, न कि सरकारी घाटवाली, उसे कायम नहीं रखा जा सकता; और वास्तव में वह एक सरकारी घाटवाली था, अतः वह संपत्ति अविलेखनीय थी और वादी को कोई स्वत्व हस्तांतरित नहीं हुआ; और

(2) और किसी भी स्थिति में, वादी का वाद परिसीमा अधिनियम की धाराओं 142 और 144 के अंतर्गत कालबाह्य है।

पहला बिंदु हमें पूर्णतः सरल नहीं प्रतीत होता, और चूँकि इसका निर्णय कई पुराने दस्तावेजों की सही व्याख्या पर निर्भर करता है, इसलिए हमने पक्षकारों को विस्तार से सुना, इस तथ्य के बावजूद कि अधीनस्थ न्यायालयों ने सर्वसम्मति से यह पाया है कि संबंधित अधिकार सरकारी घाटवाली नहीं है। पक्षकारों के बीच विवाद के गुण-दोष पर विचार करने से पहले यह समझना आवश्यक है कि "घाटवाल" से क्या अभिप्राय है और घाटवाली अधिकार क्या होता है और इन अभिव्यक्तियों का सही अर्थ समझने के लिए, हमारे मत में, पटना

उच्च न्यायालय के निर्णय में दिए गए निम्नलिखित अंश को उद्धृत करना पर्याप्त होगा, जो *रानी सोनाबती कुमारी* बनाम *राजा कीर्तिनंद सिंह*[1] मामले में है, जिसमें घाटवाली अधिकारों पर अत्यंत विस्तार से चर्चा की गई है :-

"शाब्दिक रूप से घाटवाल का अर्थ दर्रों का रक्षक होता है, और "घाटवाली अधिकार" शब्द का प्रयोग मुगलों द्वारा उन भूमियों के लिए किया जाता था, जो पहाड़ी दर्रों की रक्षा करने तथा पहाड़ियों के निकट स्थित गाँवों को असामाजिक पहाड़ी जनजातियों के आक्रमणों से बचाने के लिए कम लगान पर या बिना लगान के प्रदान की जाती थीं। ये घाटवाली अधिकार मुख्यतः बंगाल की पश्चिमी सीमा पर पाए जाते थे, विशेषकर खरगडीहा, गिद्धौर, बीरभूम, खड़गपुर, भागलपुर और संथाल परगना के क्षेत्रों में। घाटवालों की स्थिति भिन्न-भिन्न होती थी और उनके अधिकारों की प्रकृति भी स्थान के अनुसार अलग-अलग होती थी। कुछ मामलों में वे बड़े-बड़े भू-स्वामी होते थे, जिनमें से कुछ संपत्तियाँ आंशिक रूप से अर्द्ध-सैनिक बस्तियों के स्वरूप की थीं.........। कुछ मामलों में घाटवाली अधिकार सीधे शासक सत्ता द्वारा प्रदान किए जाते थे, जबकि अन्य मामलों में इन्हें भूस्वामीयों या जमींदारों द्वारा अपनी जमींदारी और प्रजा की रक्षा के उद्देश्य से स्थापित किया जाता था, ताकि उनके पास एक छोटी सैन्य शक्ति उपलब्ध रहे और वे शासक सत्ता के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन कर सकें। कभी-कभी बड़े घाटवाली भू-स्वामियों ने अपनी संपत्तियों का उप-विभाजन कर उन्हें अन्य किरायेदारों को पुनः प्रदान किया, जो अल्प लगान देने के साथ-साथ इस शर्त पर भूमि रखते थे कि वे कुछ अर्ध-पुलिस एवं सैन्य सेवाएँ प्रदान करेंगे तथा सरकार या जमींदार की आवश्यकताओं के अनुसार निश्चित संख्या में सशस्त्र व्यक्तियों की व्यवस्था करेंगे।"

इस प्रकार, सरकारी घाटवाली वह अधिकार है जो शासक सत्ता द्वारा किसी व्यक्ति के पक्ष में इस शर्त पर प्रदान किया जाता है कि वह उसके लिए घाटवाली सेवाएँ प्रदान करेगा; जबकि जमींदारी घाटवाली वह अधिकार है जिसे जमींदार द्वारा इस उद्देश्य से प्रदान किया

1 आई.एल.आर. 14 पटना 70

जाता है कि उसके लिए घाटवाली सेवाएँ की जाएँ। यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता यह सिद्ध करने के लिए उत्सुक है कि यह किरायेदारी सरकारी घाटवाली है, क्योंकि सरकारी घाटवाली को निरंतर अविलेखनीय माना गया है। इसके विपरीत, जमींदारी घाटवाली को जमींदार की सहमति से हस्तांतरित किया जा सकता है, और जहाँ स्थानीय प्रथा इसकी अनुमति देती है, वहाँ बिना उसकी सहमति के भी। जमींदारी घाटवाली से संबंधित मामलों की प्रतिवेदनों से यह प्रतीत होता है कि समय के साथ जमींदार की सहमति का महत्व कम हो गया है, और सामान्यतः यह मान लिया जाता है कि यदि जमींदार ने कोई आपत्ति नहीं की है, तो उसकी सहमति निहित है। हस्तांतरण की शक्ति की सीमा के संबंध में, *काली प्रसाद* बनाम *आनंद राय* [(1)]मामले में प्रिवी काउंसिल द्वारा किए गए निम्नलिखित अवलोकन प्रासंगिक हैं :-

"एक बार यह स्थापित हो जाए कि घाटवाल के पास हस्तांतरण की शक्ति थी, तो जैसा कि पहले कहा गया है, वह शक्ति उसके घाटवाली अधिकार और हित का अभिन्न अंग बन जाती है, और ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिससे यह सीमित किया जा सके कि वह हस्तांतरण केवल उसके जीवनकाल तक ही प्रभावी रहे और उससे अधिक नहीं।"

किसी घाटवाली अधिकार की वास्तविक प्रकृति निर्धारित करने के लिए सामान्यतः उस अनुदान का संदर्भ लेना आवश्यक होता है, जिसके द्वारा वह अधिकार स्थापित किया गया था। वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता प्रदर्श सी (1) पर निर्भर करता है, जो 1776 में अपीलकर्ता के पूर्वजों को प्रदान की गई एक घाटवाली सनद है, और जो इस प्रकार है :-

"तुम सब मौजा डुमरी घाट (अस्पष्ट), परगना गिद्धौर, सरकार मुंगेर, जो बिहार प्रांत में सम्मिलित है के चौधरी, कानूनगो, जमींदार तथा मुतसद्दी यह जान लें कि...

उक्त मौजा के सभी रहदारियों में घाटवाली के लाभ अब कुंजी सिंह, जंगल सिंह, रघो सिंह और मनोरथ सिंह, जो उक्त मौजा के घाटवार हैं, को 1184 फसली के आरंभ से, प्राचीन प्रथा के अनुसार प्रदान किए गए हैं। यह अपेक्षा की जाती है कि उन्हें प्राचीन रीति-रिवाजों के

(1) 15 आई.ए.18

अनुसार सभी रहदारियों में घाटवाली के इन लाभों का उपभोग करने दिया जाए। उक्त घाटवारों का कर्तव्य होगा कि वे अपने पद के दायित्वों के निर्वहन में सदैव तत्पर रहें और अपने इलाके के घाटों और चौकियों की दिन-रात गश्त करके रक्षा करें। यदि उनके इलाके में हत्या, उपद्रव, चोरी, राहजनी या अचानक रात्रिकालीन हमला होता है, तो वे उसके लिए उत्तरदायी होंगे और उन्हें उनके पद से हटा दिया जाएगा। इसे अनिवार्य समझकर, लिखित निर्देशानुसार कार्य किया जाए।

अगस्त शासन के 18 वें वर्ष की 5 ज़ीक़ादा, जो 1184 फ़सली के तदनुसार है।'

यह सनद कैप्टन ब्राउन द्वारा प्रदान की गई थी, जिन्हें ईस्ट इंडिया कंपनी ने जंगल तराई नामक इलाके में शांति स्थापित करने के लिए नियुक्त किया था, यह एक विशाल, बंजर और पहाड़ी इलाका था, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, जो भागलपुर के दक्षिण और राजमहल पहाड़ियों के पश्चिम में स्थित था। इस दस्तावेज़ की व्याख्या पटना उच्च न्यायालय की एक पीठ द्वारा *फुलबती कुमारी* बनाम *महेश्वरी प्रसाद*[(1)] में की गई थी, और जैसा कि उस मामले में डॉसन मिलर मुख्य न्यायाधीश द्वारा उल्लेख किया गया है,—

"यह भूमि का अनुदान नहीं है, बल्कि इसमें उल्लिखित व्यक्तियों को यह अधिकार दिया गया है कि वे पूर्व की भाँति उन लोगों से, जो सड़कों और दर्रों का उपयोग करते हैंजिनकी रक्षा करने का दायित्व घाटवालों ने लिया था घटवारी या घाटवाली शुल्क या टोल वसूल करें।"

जब हम इस सनद की तुलना कैप्टन ब्राउन द्वारा दी गई अन्य घाटवाली सनदों से करते हैं, जिनमें से कुछ पर प्रकाशित निर्णयों में चर्चा की गई है, तो अंतर बहुत स्पष्ट हो जाता है। अन्य कुछ दस्तावेज़ों में— उदाहरणार्थ, उस दस्तावेज़ में जो नारायण सिंह बनाम निरंजन चक्रवर्ती[2] में प्रिवी काउंसिल के निर्णय तथा *रानी सोनाबती कुमारी* बनाम *राजा*

---

(1) ए.आई.आर.1923 पटना 453

2 51 आई.ए. 37

कीर्तिनंद सिंह[3] में पटना उच्च न्यायालय के निर्णय का विषय था, अनुदान बहुत विस्तृत भूमि इलाके के संबंध में था और उसमें ऐसे शब्द भी प्रयुक्त किए गए थे जो यह दर्शाते थे कि सेवाएँ सीधे शासक सत्ता को प्रदान की जानी थीं। अतः केवल इस तथ्य से कि इस मामले में सनद कैप्टन ब्राउन द्वारा प्रदान की गई थी, अधिकार की प्रकृति का अंतिम निर्धारण नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें सौंपे गए दायित्वों का एक भाग पुराने अधिकारों की पुष्टि और मान्यता देना भी था। जैसा कि मुख्य न्यायाधीश डॉसन मिलर ने उल्लेख किया है, इस सनद को रामगढ़ की दीवानी न्यायालय के समक्ष हुई कुछ कार्यवाहियों के अभिलेखों के साथ पढ़ा जाना चाहिए, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि मौजा डुमरी में 8 आने का एक अधिकार गिद्धौर के जमींदार द्वारा दो व्यक्तियों को प्रदान किया गया था, जिनमें से एक वही घाटवाल था जिसका उल्लेख कैप्टन ब्राउन की सनद में है, और यह अनुदान कैप्टन ब्राउन की स्वीकृति से दिया गया था। वर्तमान मामले में, 1798 का वह दस्तावेज़, जो मूल न्यायालय की कार्यवाही से संबंधित था और जो *फुलबती*[4] मामले का निर्णय करने वाले न्यायाधीशों के समक्ष था, प्रस्तुत नहीं किया गया है; तथापि हमारे समक्ष उसी कार्यवाही में अपीलीय न्यायालय का 18 मार्च, 1799 का एक निर्णय उपलब्ध है। इस निर्णय में उल्लेख है कि घाटवालों का पक्ष यह था कि वे तीन पीढ़ियों से गाँव डुमरी के आधे भाग के कब्जे में थे, किन्तु 1187 फसली (1780 ई.) में गिद्धौर के जमींदार ने “लगान” बढ़ाना चाहा, जिसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया और बढ़े हुए लगान पर नया पट्टा या कबूलियत लेने से इनकार कर दिया। इसके पश्चात न्यायालय ने जमींदार को पट्टा देने का आदेश दिया, परंतु जमींदार ने ऐसा नहीं किया और बलपूर्वक घाटवालों को बेदखल कर दिया। इसके बाद उन्होंने प्रार्थना की कि जमींदार को आदेश दिया जाए कि वह उन्हें पट्टा प्रदान करे और पुराने लगान पर उनकी कबूलियत स्वीकार करे। जिस अपीलीय न्यायालय में जमींदार ने अपील की थी, उसने प्रथम न्यायालय के उस आदेश को बरकरार रखा, जिसमें

3 आई.एल.आर. 14 पटना 70

4 ए.आई.आर. 1923 पटना 453

पट्टा प्रदान करने का निर्देश दिया गया था। यह दस्तावेज़ यह दर्शाता है कि पहला, डुमरी के आधे भाग के संबंध में घाटवाली अधिकार 1789 से पूर्व तीन पीढ़ियों से अस्तित्व में था, अर्थात यह कैप्टन ब्राउन की सनद से काफी पहले अस्तित्व में आ चुका था, और दूसरा, यह अधिकार जमींदार के अधीन धारित थ; अन्यथा यह आवश्यक नहीं होता कि जमींदार पट्टा दे और घाटवाल उसके पक्ष में कबूलियत निष्पादित करे।

हमारे समक्ष एक अन्य दस्तावेज़ (प्रदर्श-1) भी है, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के एक कर्मचारी खादिम मुहम्मद अताउल्लाह की प्रतिवेदन है, इसमें गिद्धौर के तत्कालीन जमींदारों द्वारा दिए गए कुछ कथनों को सम्मिलित किया गया है, जिनसे यह पता चलता है कि वे लगभग 700 वर्षों से जमींदारी के कब्जे में थे और "परगना की मिल्कियत जमींदारी, चौधरी और कानूनगोई ....उनके ही अधिकार में रही है।" यह दस्तावेज़ दर्शाता है कि गिद्धौर एक प्राचीन जमींदारी थी और जमींदार ही चौधरी तथा कानूनगोई के कार्य भी करता था। यह अंतिम तथ्य विशेष महत्व रखता है, क्योंकि कैप्टन ब्राउन की सनद चौधरी, कानूनगो आदि को संबोधित थी।

जिस *फूलबती कुमारी* [5]के मामले का ऊपर उल्लेख किया गया है, उसमें बंगाल जिला गज़ेटियर, खंड XVII के पृष्ठ 168 से एक अंश उद्धृत किया गया था, जो इस प्रकार है :-

"लगभग 1774 के आसपास इस इलाके की अराजक स्थिति के कारण ब्रिटिश सरकार ने इसे कैप्टन जेम्स ब्राउन के अधीन कर दिया, जिन्होंने दो अपवादों को छोड़कर शेष संपत्तियों का निपटारा घाटवालों के साथ किया। ये दो अपवाद डुमरी और महेसरी थे, जिनका निपटारा सीधे स्वामियों के साथ किया गया, इसके पीछे यह कारण बताया गया कि घाटवाली अधिकारधारी कैप्टन ब्राउन के आने की खबर पाकर भाग गए थे, क्योंकि डाकू और लुटेरे के रूप में उनकी प्रतिष्ठा इतनी प्रबल थी कि वे किसी सरकारी अधिकारी का सामना करने से परिणामों के भय के बिना नहीं कर सकते थे। हालाँकि, डुमरी के मामले में घाटवालों ने यह

5 ए.आई.आर. 1923 पटना 453

देखकर कि उनकी अनुपस्थिति में उनकी भूमि का निपटान कर दिया गया था, वापस आकर एक सनद प्राप्त की, जिसके द्वारा वह अधिकार गिद्धौर के राजा के अधीन उन्हें पुनः प्रदान किया गया। घाटवालों के साथ जिन संपत्तियों का निपटान किया गया था, उनमें से अब केवल दो ही उनके वंशजों के पास हैं, *अर्थात्* तिलवा और केवल। अन्य संपत्तियाँ गिद्धौर के महाराजा, चेतरू राय, अखलेश्वर प्रसाद तथा रोहिणी के अन्य व्यक्तियों के हाथों में चली गई हैं।"

जिला गज़ेटियर में दिया गया कथन आवश्यक रूप से निर्णायक नहीं है, किंतु गज़ेटियर एक आधिकारिक दस्तावेज है जिसका कुछ महत्व है, क्योंकि इसे अनुभवी अधिकारियों द्वारा बड़ी सावधानी से, आधिकारिक अभिलेखों से तथ्य प्राप्त करने के बाद संकलित किया जाता है। जैसा कि मुख्य न्यायाधीश डॉसन मिलर ने *फूलबती कुमारी* [6]के मामले में इंगित किया है, ऊपर उद्धृत कथन के बाद के भाग में कुछ अशुद्धियाँ हैं, लेकिन उसके प्रारंभिक भाग के संबंध में ऐसा प्रतीत होता है कि उसे उन दस्तावेजों से पर्याप्त समर्थन प्राप्त है जिनका पहले उल्लेख किया गया है।

अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने इस तथ्य पर अत्यधिक निर्भर किया कि डुमरी घाटवाली का उल्लेख कैप्टन ब्राउन की "इंडिया ट्रैक्ट्स" में जंगल तराई जिलों के समाहर्ता के अधीन रखी गई घाटवालियों में से एक के रूप में किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मुद्दा न तो किसी अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष उठाया गया था, और न ही कैप्टन ब्राउन की उक्त कृति उन्हें प्रस्तुत की गई थी। अतः उत्तरदाता की ओर से उठाई गई इस आपत्ति में पर्याप्त बल है कि उसे इस विषय का अध्ययन करने तथा संबंधित सामग्री इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर नहीं मिला, जिससे न्यायालय यह निर्धारित कर सके कि कैप्टन ब्राउन के कथन को किस अर्थ और महत्व में लिया जाना चाहिए। किन्तु इस आपत्ति

6 ए.आई.आर.1923 पटना 453

से परे, हमें उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि कैप्टन ब्राउन के कथन से जो निष्कर्ष निकाला जाना चाहा गया है, वह निम्नलिखित कारणों से पूर्णतः उचित नहीं है :-

1. केवल इस तथ्य से कि घाटवाली को समाहर्ता के अधीन दिखाया गया है, उसकी प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं होता; अर्थात यदि वह जमींदारी घाटवाली थी, तो मात्र समाहर्ता के अधीन बताए जाने से वह सरकारी घाटवाली नहीं बन सकती।

2. जंगल तराई जिलों के समाहर्ता के रूप में, कैप्टन ब्राउन का नियंत्रण केवल घाटवालों पर ही नहीं, बल्कि उनके प्रशासनिक इलाके के अंतर्गत आने वाले जमींदारों पर भी प्रतीत होता है।

3. जंगल तराई घाटवालों तथा जमींदार के साथ उनके संबंध के बारे में कैप्टन ब्राउन द्वारा की गई टिप्पणियाँ अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत किए गए दृष्टिकोण का अधिक समर्थन नहीं करतीं।

जंगल तराई घाटवालियों का उल्लेख करते हुए कैप्टन ब्राउन अपनी पुस्तक में इस प्रकार कहते हैं :-

"जंगल तराई के सभी घाटवाल पहले उन विभिन्न राजाओं के अधीन थे, जिनके राज्यों से उनकी घाटवालियाँ संबंधित थीं; वे सामंती निष्ठा के प्रतीक के रूप में एक हल्का-सा कर अदा करते थे, और इस बात के लिए बाध्य थे कि वे (विशेषकर दक्षिण की ओर से) होने वाले सभी आक्रमणों का विरोध करें, जब भी उनके राजा उन्हें बुलाएँ तो अपने सभी अनुयायियों के साथ सशस्त्र होकर उपस्थित हों, तथा अपने-अपने क्षेत्रों में होने वाली प्रत्येक हिंसा और अनियमितता के लिए उत्तरदायी हों :- उनके अनुयायी आज भी उन्हीं सामंती संबंधों के अधीन उनसे बंधे हुए हैं, और सामंती सेवाओं के बदले उन्हें भूमि प्राप्त है; इन प्रमुखों का अपने अधीनस्थों पर अधिकार इतना पूर्ण है कि उससे अधिक पूर्ण अधिकार की कल्पना भी नहीं की जा सकती; यहाँ तक कि युद्ध में पकड़े जाने पर मृत्यु का भय भी उनसे

उनके प्रमुख, उसके परिवार या संपत्ति से संबंधित किसी रहस्य को प्रकट कराने के लिए पर्याप्त नहीं होता।"

फिर, कैप्टन ब्राउन द्वारा गिद्धौर के जमींदार का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है:-

"गिद्धौर के राजा का राज्य पहले बहुत विस्तृत था, किंतु बीरभूम के राजा और कॉमगर कॉन द्वारा की गई विजय तथा उन युद्धों के कारण घाटवालों को मिली स्वतंत्रता के अवसर ने वर्तमान राजाओं गोपाल सिंह और दुर्रूप सिंह को इतनी कमजोर स्थिति में पहुँचा दिया है कि वे अब लगभग उस स्तर पर आ गए हैं जहाँ से वे पुनः पर्याप्त प्रभाव प्राप्त कर सकें, यह लगभग असंभव है; उनका अब कोई भी राजनीतिक महत्व शेष नहीं रहा है।"

समग्र रूप से देखा जाए तो प्रतीत होता है कि डुमरी के घाटवाल इतने प्रभावशाली व्यक्ति नहीं थे कि वे जमींदार से अलग होकर स्वयं को स्वतंत्र प्रमुख के रूप में स्थापित कर सकें।

इस प्रश्न पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालने वाले साक्ष्य के दो अन्य बिंदु हैं। प्रथम, अपीलकर्ता का अधिकार स्थायी बंदोबस्त में गिद्धौर जमींदारी के अंतर्गत सम्मिलित था; और द्वितीय, अधिकारों के अभिलेख में इसे गिद्धौर के जमींदार के अधीन इस्तमरारी मोक़रारी अधिकार के रूप में दर्शाया गया है। *राजा लेलानंद सिंह बहादुर बनाम बंगाल सरकार*[7] के मामले में, जहाँ सरकार ने खुरकपुर जमींदारी में घाटवाली को राजस्व निर्धारण के लिए वापस लेने का दावा किया था, वह दावा प्रिवी काउंसिल द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। उस निर्णय का एक आधार यह भी था कि घाटवाली भूमि जमींदारी का भाग थी, स्थायी बंदोबस्त में सम्मिलित थी, और उस जमींदारी पर निर्धारित राजस्व में शामिल थी। निस्संदेह, *प्रथम दृष्टया* यह तथ्य कि वह अधिकार जमींदार के स्थायी बंदोबस्त में शामिल था और उस व्यवस्था के अंतर्गत घाटवाल को जमींदार को लगान देना पड़ता था, यह अनुमान उत्पन्न करता है कि घाटवाली किसी न किसी रूप में जमींदार से संबंधित थी, किन्तु यह स्वीकार करना आवश्यक है कि भूमि का स्थायी बंदोबस्त "उस भूमि पर धारित अधिकार की प्रकृति

7 6 मूर का आई.ए. 101

को प्रभावित नहीं करता, और न ही यह सार्वजनिक सेवाओं को जमींदार के अधीन निजी सेवाओं में परिवर्तित कर सकता है" : (देखें *राजा निलमोनी सिंह बनाम बकरानाथ सिंह*[8])। कई निर्णयों में ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें सरकारी घाटवालों की संपत्ति अन्य व्यक्तियों की जमींदारी में सम्मिलित पाई गई है, किंतु जहाँ घाटवाली की वास्तविक प्रकृति के संबंध में स्पष्ट साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, वहाँ यह तथ्य कि अधिकार जमींदारी में शामिल है और उस पर निर्धारित राजस्व में समाहित है, उस पक्ष के पक्ष में झुकाव उत्पन्न करता है जो यह कहता है कि वह अधिकार जमींदारी पर आश्रित है। वर्तमान मामले में, स्थायी बंदोबस्त से उत्पन्न यह अनुमान अधिकारों के अभिलेख की प्रविष्टि से और अधिक पुष्ट हो जाता है, जिसमें संबंधित अधिकार को जमींदार के अधीन इस्तमरारी मोक़रारी बताया गया है।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रदर्श एन और एन-1 तथा कुछ ऐसे लगान रसीदों पर निर्भर किया जो जमींदार द्वारा अपीलकर्ता को जारी की गई थीं, ताकि यह सिद्ध किया जा सके कि अपीलकर्ता का स्वतंत्र स्वत्व है, किन्तु, हमारे मत में, ये दस्तावेज़ उन्हें अधिक सहायता नहीं पहुँचाते। प्रदर्श एन 1859 में अपीलकर्ता के एक पूर्वज को किसी ऐसे अधिकारी द्वारा जारी किया गया नोटिस है, जिसके हस्ताक्षर दस्तावेज़ पर अस्पष्ट हैं। इसमें थाना चकाई के उप-निरीक्षक की एक प्रतिवेदन का उल्लेख है, जिसमें कहा गया है कि "सौतार (दुष्ट प्रवृत्ति के लोग) अपने-अपने स्थानों पर हैं और कोई दंगा या अशांति नहीं हो रही है", तथा घाटवाल को निर्देश दिया गया है कि वह अपने इलाके के सौतारों की सूची तैयार कर थाना प्रभारी के समक्ष प्रस्तुत करे। प्रदर्श एन-1 एक समान नोटिस है, किन्तु वह अपूर्ण है और यह भी स्पष्ट नहीं है कि इसे किसने जारी किया। इसमें पुलिस उप-निरीक्षक के प्रतिवेदन का उल्लेख है कि फसल खराब होने के कारण डकैती और चोरी की घटनाएँ हो रही हैं, तथा सुझाव दिया गया है कि उस इलाके के जमींदारों को निर्देश दिया जाए कि वे "घटनाओं पर निगरानी रखें और दुष्ट व्यक्तियों एवं उपद्रवकारियों पर दृष्टि रखें ताकि ऐसी घटनाएँ रोकी जा

8 9 आई. ए. 104

सकें।" ये दस्तावेज़ अनिवार्य रूप से यह सिद्ध नहीं करते कि अपीलकर्ता एक सरकारी घाटवाल था। पुराने समय में ऐसे नोटिस इलाके के जमींदारों को जारी करना असामान्य नहीं था, जैसा कि स्वयं प्रदर्श एन-1 से भी स्पष्ट है, और केवल इस तथ्य से कि जिस व्यक्ति को नोटिस जारी किया गया था उसे घाटवाल कहा गया, यह सिद्ध नहीं होता कि उसे सरकारी घाटवाल के रूप में संबोधित किया गया था, न कि जमींदारी घाटवाल के रूप में।

अपीलकर्ता जिस अगले साक्ष्य पर निर्भर करना चाहता है, उसमें कुछ लगान रसीदें तथा सड़क उपकर की रसीदें शामिल हैं, किन्तु ये भी उसे सहायता नहीं पहुँचातीं, क्योंकि इनमें अन्य बातों के साथ यह कथन भी अंकित है कि जिस अधिकार के संबंध में ये रसीदें जारी की गई थीं, वह गिद्धौर की स्वामित्व जमींदारी से संबंधित था।

साक्ष्यों की यह संक्षिप्त समीक्षा यह दर्शाने के लिए पर्याप्त है कि अपीलकर्ता अधिकारों के अभिलेख तथा स्थायी बंदोबस्त के अभिलेख से उत्पन्न अनुमान को स्पष्ट और निर्णायक साक्ष्य द्वारा खंडित करने में असफल रहा है, और वह यह सिद्ध करने में भी विफल रहा है कि संबंधित अधिकार सरकारी घाटवाली है। यह भी प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि इस मुकदमे से पूर्व जो बंधक वाद चला था, उसमें प्रतिरक्षा के रूप में यह कोई आरोप नहीं लगाया गया था कि घाटवाली अहस्तांतरणीय नहीं थी, और यद्यपि यह प्रश्न निष्पादन कार्यवाही में उठाया गया था, परंतु वह प्रथम न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता के विरुद्ध निर्णीत किया गया और अपील में उसे छोड़ दिया गया। इन परिस्थितियों में, हमें अधीनस्थ न्यायालयों के उस समवर्ती निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता, जिन्होंने इस मामले पर अत्यंत सावधानीपूर्वक विचार किया है।

अब अपील में उठाए गए दूसरे प्रश्न पर विचार करते हुए, हमें यह प्रतीत होता है कि दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने प्रतिकूल कब्जे के आधार पर प्रतिवादियों के विरुद्ध समवर्ती निष्कर्ष दर्ज किए हैं। इन निष्कर्षों को देते समय, अधीनस्थ न्यायालयों ने साक्ष्यों पर विस्तार से विचार किया है तथा अपने निष्कर्षों के समर्थन में युक्तिसंगत कारण भी दिए हैं।

यह न्यायालय सामान्यतः उन विषयों की पुनः जाँच करने में अनिच्छुक रहता है, जिनकी पूरी जाँच अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा की जा चुकी हो और जिन पर समवर्ती निष्कर्ष मौजूद हों। वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता हमें कोई ऐसे असाधारण परिस्थितियाँ दिखाने में असफल रहा है, जो हमें इस स्थापित और सुविचारित प्रथा से हटने के लिए प्रेरित करें, अतः इस दृष्टि से अधीनस्थ न्यायालयों के निष्कर्ष स्वीकार किए जाने चाहिए।

तथापि, यह तर्क दिया गया कि किसी भी स्थिति में वादी का वाद परिसीमा अधिनियम की धारा 142 के अंतर्गत बाधित है, क्योंकि वादी पर यह सिद्ध करने का भार था कि वह वाद दायर होने से 12 वर्षों के भीतर विवादित भूमि, विशेषकर वादपत्र की अनुसूची-II में वर्णित भूमि, के कब्जे में रहा है, किन्तु वह ऐसा करने में असफल रहा। हमारे मत में यह आपत्ति अस्वीकार की जानी चाहिए। विचारण न्यायाधीश ने अपने निर्णय में इस संबंध में अत्यंत स्पष्ट निष्कर्ष इस प्रकार दिया था :-

"वादपत्र में प्रस्तुत कब्जे और बेदखली की कहानी को स्वीकार किया जाना चाहिए, क्योंकि, जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, इस मामले में वादी के सतही तथा उप-मृदा दोनों प्रकार के कब्जे को सिद्ध करने के लिए अत्यंत प्रबल साक्ष्य उपलब्ध हैं।"

अधीनस्थ न्यायाधीश के इस निष्कर्ष को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दिए जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता, और यद्यपि इस न्यायालय में अपीलकर्ता की ओर से दायर किए गए कथन-पत्र में कुल 16 आधार दिए गए हैं, फिर भी यह नहीं कहा गया है कि कोई ऐसा साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि वादी वाद दायर होने से 12 वर्षों के भीतर विवादित भूमि या वादपत्र की अनुसूची-II में उल्लिखित भूमि के कब्जे में था।

अतः इस अपील में उठाए गए दोनों बिंदु असफल होते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि समस्त अधिकार बिक्री के माध्यम से वादी को प्राप्त हो चुका है, किन्तु इस तथ्य से पृथक यह सुस्थापित विधि है कि जमींदार को उन किरायेदारियों में भूमिगत अधिकारों का स्वामी माना जाता है, जो उसने सृजित की हैं, जब तक इसके विपरीत कोई प्रमाण न हो कि

उसने वे अधिकार कभी त्याग दिए थे। (देखें: *हरि नारायण सिंह* बनाम *श्रीराम चक्रवर्ती*[9] तथा *दुर्गा प्रसाद सिंह* बनाम *ब्रज नाथ बोस*[10])

परिणामस्वरूप यह अपील असफल होती है और इसे व्यय सहित खारिज किया जाता है।

अपील खारिज की जाती है।

अपीलकर्ता के अभिकर्ता : *आर. आर. बिस्वास*।

उत्तरदाता के अभिकर्ता : *आर. सी. प्रसाद*।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।

9 37 आई.ए. 136

10 39 आई.ए. 133